International Journal of Sanskrit Research 2016; 2(3): 41-42

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2016; 2(3): 41-42
© 2016 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 14-03-2016
Accepted: 15-04-2016

Pradeep Tiwary
Sanskrit Dept. Mithila Sanskrit Research Institute, Darbhanga, India

Correspondence
Pradeep Tiwary
Sanskrit Dept. Mithila Sanskrit Research Institute, Darbhanga, India

भास युगीन सन्यास जीवन का विश्लेषण

Pradeep Tiwary

भास के नाटकों के विश्लेषण से प्रतीत होता है कि भास कालिन जो सन्यास आश्रम था। उसका कालगत स्वरूप विच्छिन्न हो चला था। उस समय में वस्त्र विशेष को धारण करके सन्यास दीक्षा स्वीकार करने वाले व्यक्ति को सन्यासी कहते थे, समाज में सन्यासियों का अत्यधिक सम्मान था। "प्रतिमानाटकम्" में रावण यदा परिव्राजक रूप में राम के पास पहुँचता है, तो श्रीरामचन्द्र जी "भगवन्" शब्द का प्रयोग कर उसका यथोचित सत्कार करते हैं और वे सीता से कहते हैं कि भूदेव की सेवा करो। रावण जो–जो बातें राम से कहता है राम उन सब पर आश्वासन करते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि भास के युग में सन्यासियों के प्रति अपार श्रद्धा थी।

उस समय लोग जीविका के निमित्त भी सन्यास का उपयोग करने लगे थे। जैसा कि– "स्वप्नवासवदत्तम्" नाटक में यौगन्धरायण का कथन है कि– "नाहं काषायवृत्तिहेतोः प्रपन्नः"।[1] "मैं जीविका के लिए गेरुआ वस्त्र नहीं धारण किया हूँ।"

भास के नाटकों से हमें दो प्रकार के सन्यासियों का जीवनवृत्त प्राप्त है। जिसमें एक तो भ्रमण करने वाले परिव्राजक कहलाते थे और दूसरे बौद्ध सन्यासी भी थे, जिन्हें श्रमणक कहते थे।

परिव्राजक का उल्लेख हमें "चारुदत्तम्" नाटक में प्राप्त होता है, जहाँ चेट वसन्तसेना से किसी हाथी के बच्चे के द्वारा किसी परिव्राजक सन्यासी के पकड़े जाने की चर्चा करता है। उसके बाद उस हाथी के बच्चे से परिव्राजक को बचाने वाली वार्ता को सुनाकर आत्मप्रशंसा भी प्राप्त करता है।

"चारुदत्तम्" नाटक में ही निर्वेद से ही सन्यास लेने की उक्ति कही गयी है। "अद्यैव कदाचिन्निर्वेदन प्रवजेयम्"।[2] वहाँ पर संवाहक वसन्तसेना से उद्वेग से संन्यास लेने की वार्ता करता है।

त्रिदण्डी सन्यासी भी उस समय होते थे। "पंचरात्रम्" नाटक में वृहन्नला रूप में अर्जुन युधिष्ठिर के विषय में त्रिदण्डधारी "त्रिदण्डधारी न च दण्डधारकः।"[3] शब्द का प्रयोग करते हैं। श्रमणक बौद्ध सन्यासियों को कहते हैं। इनका उल्लेख भास के नाटकों में मिलता है। "अविमारकम्" नाटक में विदूषक नलनिका से कहता है कि–

यज्ञोपवीते ब्राह्मणः चीवरेण रक्तपटः यदि वस्त्रमपनयामि श्रमणको भवामि।[4]

"मैं यज्ञोपवीत से ब्राह्मण, वस्त्र खण्ड से रक्तपट (संन्यासी–विशेष) हूँ। यदि वस्त्र निकाल दूँ, तो श्रमणक हो जाऊँगा।" उक्त कथन से यह ज्ञात होता है कि श्रमणक निर्वस्त्र भी रहते थे।

भास के नाटकों में जहाँ एक तरफ ऊँची तबके के लोग, उन्हें सन्यासियों को ऊँची दृष्टि से देखते थे, उनका सम्मान करते थे वहीं कुछ लोग श्रमणक सन्यासियों के आलोचक भी थे तथा उनकी कमजोरियाँ खोजा करते थे एवं उनके निन्दित कर समाज विरुद्ध कार्यो के लिए उनकी समालोचना किया करते थे। भास ने श्रमणकों के निन्दनीय एवं पतित कार्यों का अपने नाटकों में प्रकाशित किया है।

उस समय श्रमणक पतित हो रहे थे। उन्हें यदि नौकर की स्त्री भी एकान्त में रमण का संकेत कर देती थी, तो उन्हें निद्रा नहीं आती थी। वे सर्वदा सहवास के लिए तत्पर रहते थे। "चारुदत्तम्" नाटक में विदूषक की उक्ति– "मैं मजदूर की स्त्री के द्वारा संकेत स्थल पर बुलाये गये बौद्ध सन्यासी की भाँति निद्रा का आनन्द नहीं ले रहा हूँ।" बौद्ध संन्यासियों के कलुषित जीवन पक्ष को अभिव्यक्त करता है।

इस प्रकार भास के नाटकों में सन्यास–जीवन अपना प्राचीन रूप मलिन कर चुका था, क्योंकि उस समय यह नियम नहीं रह गया था कि ब्रह्मचर्य, गृहस्थ और वानप्रस्थ के पश्चात् ही चतुर्थ आश्रम स्वीकारणीय है। प्रायः लोक उद्वेग, वृत्ति आदि के कारण भी सन्यास वस्त्र धारण करके सन्यासी बनने का ढोंग करते थे। इसके बावजूद जो सन्यासी वैदिक थे उनका समाज में सम्मान था।

भास ने परम्परागत सन्यासी का कहीं भी उपहास के रूप में उल्लेख नहीं किया है, हाँ बौद्ध सन्यासियों का वैदिक समाज में उस काल में आदर नहीं था। इस प्रकार भास के नाटकों में परम्परागत वैदिक भारतीय परम्परा के आश्रम–व्यवस्था का अत्यन्त ही सजीव चित्रण प्राप्त होता है। नाटकों के अनुसार सुविदित होता है कि भास कालिन वर्णाश्रम–व्यवस्था थी। वर्ण व्यवस्था के रूप में जाति प्रथा का अस्तित्व था, ब्राह्मण आदि जातियाँ भी थीं। ब्राह्मण धार्मिक कार्य तथा शान्ति निमित्त यज्ञ आदि भी करते थे। तपोवन में वानप्रस्थी तथा सन्यासी निवास करते थे। ब्रह्मचारी गुरु के समीप रहकर आश्रम में वेदाध्ययन करते थे। आश्रम से अध्ययन पूर्ण करके ही ब्रह्मचारी बटुक गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करता था। तपोवन के निवासी याचना नहीं करते थे, वे सदैव सन्तोषी होते थे। भास काल में सुस्पष्ट है कि उस समय नैतिकता तथा आदर्श जीवन का अधिक महत्त्व था। आश्रम व्यवस्था ही धर्म का प्रमुख विराम स्थल एवं अंग विशेष थी।

संदर्भ–ग्रन्थ

1. चारुदत्तम
2. प{िरात्रम्,
3. अविमारकम्
4. प्रतियौगन्ध नारायण